सोना हिरनी

महादेवी वर्मा

सोना की आज अचानक स्मृति होने का कारण है । मेरे परिचित स्वर्गीय डॉक्टर धीरेंद्रनाथ बसु की पौत्री सुस्मिता ने लिखा है–

''गत वर्ष अपने पड़ोसी से मुझे एक हिरन मिला था । बीते कुछ महीनों में हम उससे स्नेह करने लगे हैं, परंतु अब मैं अनुभव करती हूँ कि सघन जंगल से संबंध रहने के कारण तथा अब बड़े हो जाने के कारण उसे पलने के लिए अधिक विस्तृत स्थान चाहिए। क्या कृपा करके आप उसे स्वीकार करेंगी ? सचमुच मैं आपकी बहुत आभारी हूँगी, क्योंकि आप जानती हैं, मैं उसे ऐसे व्यक्ति को नहीं देना चाहती, जो उससे बुरा व्यवहार करे । मेरा विश्वास है, आपके यहाँ उसकी भली–भाँति देखभाल हो सकती है ।''

कई वर्ष पूर्व मैंने निश्चय किया कि अब हिरन नहीं पालूँगी, परंतु आज उस नियम को भंग किए बिना इस कोमलप्राण जीव की रक्षा संभव नहीं है ।

सोना भी इसी प्रकार अचानक आई थी, परंतु वह तब तक अपनी शैशवावस्था भी पार नहीं कर सकी थी । सुनहरे रंग के रेशमी लच्छों की गाँठ के समान उसका कोमल लघु शरीर

था । छोटा-सा मुँह और बड़ी-बड़ी पानीदार आँखें । देखती थी तो लगता था कि अभी छलक पड़ेंगी ।

सब उसके सरल शिशु रूप से इतने प्रभावित हुए कि किसी चंपक-वर्णा रूपसी के उपयुक्त सोना, सुवर्णा, सुवर्णलेखा आदि नाम उसका परिचय बन गए ।

उसका मुख इतना छोटासा था कि उसमें शीशी का निप्पल समाता ही नहीं था- उस पर भी उसे पीना भी नहीं आता था । फिर धीरे -धीरे उसे पीना ही नहीं, दूध की बोतल पहचानना भी आ गया । आँगन में कूदते-फाँदते हुए भी भक्तिन को बोतल साफ करते देख कर वह दौड़ आती और अपनी तरल चकित आँखों से उसे ऐसे देखने लगती, मानो वह कोई सजीव मित्र हो ।

उसने रात में मेरे पलंग के पाये से सटकर बैठना सीख लिया था, पर वहाँ गंदा न करने की आदत कुछ दिनों के अभ्यास से पड़ सकी । अँधेरा होते ही वह मेरे कमरे के पलंग के पास आ बैठती और सवेरा होने पर ही बाहर निकलती ।

उसका दिन भर का कार्यकलाप भी एक प्रकार से निश्चित था । विद्यालय और छात्रावास की विद्यार्थियों के निकट पहले वह कौतुक का कारण रही, परंतु कुछ दिन बीत जाने पर वह उनकी ऐसी प्रिय साथिन बन गई, जिसके बिना उनका किसी काम में मन नहीं लगता था ।

दूध पीकर और भीगे चने खाकर सोना कुछ देर कंपाउंड में चारों पैरों को संतुलित कर चौकड़ी भरती । फिर वह छात्रावास पहुँचती और प्रत्येक कमरे के भीतर, बाहर निरीक्षण करती । सबेरे छात्रावास में विचित्र-सी क्रियाशीलता रहती है- कोई छात्रा हाथ-मुँह धोती है, कोई बालों में कंघी करती है, कोइ साड़ी बदलती है, कोई अपनी मेज़ की सफाई करती है, कोई स्नान करके भीगे कपड़े सूखने के लिए फैलाती है और कोई पूजा करती है । सोना के पहुँच जाने पर इस विविध कर्म-संकुलता में एक नया काम और जुड़ जाता था । कोई छात्रा उसके माथे पर कुमकुम का बड़ा-सा टीका लगा देती, कोई गले में रिबन बाँध देती और कोई पूजा के बताशे खिला देती ।

मेस में उसके पहुँचते ही छात्राएँ ही नहीं, नौकर-चाकर तक दौड़ आते और सभी उसे कुछ-न- कुछ खिलाने को उतावले रहते, परंतु उसे बिस्कुट को छोड़कर कम खाद्य पदार्थ पसन्द थे ।

छात्रावास का जागरण और जलपान अध्याय समाप्त होने पर वह घास के मैदान में कभी दूब चरती और कभी उस पर लोटती रहती । मेरे भोजन का समय वह किस प्रकार जान लेती थी, यह समझने का उपाय नहीं है, परंतु वह ठीक उसी समय भीतर आ जाती और तब मुझसे सटी खड़ी रहती जब तक मेरा खाना समाप्त न हो जाता । कुछ चावल, रोटी आदि उसका भी प्राप्य रहता था, परंतु उसे कच्ची सब्ज़ी ही अधिक भाती थी ।

घंटी बजते ही वह फिर प्रार्थना के मैदान में पहुँच जाती और उसके समाप्त होने पर छात्रावास के सामने ही कक्षाओं के भीतर-बाहर चक्कर लगाना आरम्भ करती ।

उसे छोटे बच्चे अधिक प्रिय थे, क्यों कि उनके साथ खेलने का अधिक अवकाश रहता था । वे पंक्तिबद्ध खड़े होकर सोना-सोना पुकारते ओर वह उनके ऊपर से छलाँग लगाकर, एक ओर से दूसरी ओर कूदती रहती । यह सरकस जैसा खेल कभी घंटों चलता, क्योंकि खेल के घंटों में बच्चों की एक कक्षा के उपरांत दूसरी आती रहती ।

मेरे प्रति स्नेह-प्रदर्शन के उसके कई प्रकार थे । बाहर खड़े होने पर वह सामने या पीछे से छलाँग लगाती और मेरे सिर के ऊपर से दूसरी ओर निकल जाती । प्रायः देखने वालों को भय होता था कि उसके पैरों से मेरे सिर पर चोट न लग जाए, परंतु वह पैरों को इस प्रकार सिकोड़े रहती थी और मेरे सिर को इतनी ऊँचाई से लाँघती थी कि चोट लगने की कोई संभावना ही नहीं रहती थी ।

भीतर आने पर वह मेरे पैरों से अपना शरीर रगड़ने लगती । मेरे बैठे रहने पर वह साड़ी का छोर मुँह में भर लेती और कभी पीछे चुपचाप खड़े होकर चोटी ही चबा डालती । डाँटने पर वह अपनी बड़ी गोल और चकित आँखों में ऐसी अनिर्वचनीय जिज्ञासा भरकर एकटक देखने लगती कि हँसी आ जाती ।

यदि सोना को स्नेह की अभिव्यक्ति के लिए मेरे सिर के ऊपर से कूदना आवश्यक लगेगा तो वह कूदेगी ही । मेरी किसी अन्य परिस्थिति से प्रभावित होना, उसके लिए संभव ही नहीं था ।

कुत्ता स्वामी और सेवक का अंतर जानता है और स्वामी के स्नेह या क्रोध की प्रत्येक मुद्रा से परिचित रहता है । स्नेह से बुलाने पर वह गद्‌गद् होकर निकट आ जाता है और क्रोध करते ही सभीत और दयनीय बनकर दुबक जाता है ।

पर हिरन यह अंतर नहीं जानता, अतः उसका अपने पालने वाले से डरना कठिन है । यदि उस पर क्रोध किया जाए तो वह अपनी चकित आँखों में और अधिक विस्मय भरकर पालने वाले की दृष्टि से दृष्टि मिलाकर खड़ा रहेगा । मानो पूछता हो, क्या यह उचित है ? वह केवल स्नेह पहचानता है, जिसकी स्वीकृति जताने के लिए उसकी विशेष चेष्टाएँ हैं ।

मेरी बिल्ली गोधूली, कुत्ते हेमंत-वसंत, कुत्ती फ्लोरा सब पहले इस नए अतिथि को देखकर रुष्ट हुए, परंन्तु सोना ने ही कुछ दिनों में सबसे सख्य स्थापित कर लिया । फिर तो वह घास पर लेट जाती और कुत्ते-बिल्ली उस पर उछलते -कूदते कोई उसके कान खींचता कोई पैर । और जब वे इस खेल में तन्मय हो जाते, तब वह अचानक चौकड़ी भर कर भागती और वे गिरते-पड़ते उसके पीछे दौड़ लगाते ।

वर्षभर का समय बीत जाने पर हरिण-शावक से सोना हरिणी में परिवर्त्तित होने लगी । उसके शरीर के पीताभ रोएँ ताम्रवर्णी झलक देने लगे । टाँगें अधिक सुडौल और खुरों के कालेपन में चमक आ गई । ग्रीवा अधिक बंकिम और लचीली हो गई । पीठ में भराव वाला उतार चढाव और स्निग्धता दिखाई देने लगी । परंतु सबसे अधिक विशेषता तो उसकी आँखों और दृष्टि में मिलती थी । आँखों के चारों ओर खिंची कज्जल कोर में नीले गोलक और दृष्टि ऐसी लगती थी, मानो नीलम के बल्बों मैं उजली विद्युत का स्फुरण हो ।

संभवतः अब उसमें वन तथा स्वजाति का स्मृति-संस्कार जागने लगा था । प्रायः सूने मैदान में वह गर्दन ऊँची करके किसी की आहट की प्रतीक्षा में खड़ी रहती । वासंती हवा बहने पर यह मूक प्रतीक्षा और अधिक मार्मिक हो उठती । शैशव के साथियों से और उनकी उछल-कूद से अब उसका पहले जैसा मनोरंजन नहीं होता था, अतः उसकी प्रतीक्षा के क्षण कुछ अधिक हो जाते थे ।

इसी बीच फ्लोरा ने भक्तिन की कुछ अँधेरी कोठरी के एकांत कोने में चार बच्चों को जन्म दिया और वह खेल के कमियों को भूलकर अपनी नवीन सृष्टि के संरक्षण में व्यस्त हो गई । एक-दो दिन सोना अपनी सखी को खोजती रही, फिर उसे इतने लघु जीवों से घिरा देखकर उसकी स्वाभाविक चकित दृष्टि गंभीर विस्मय से भर गई ।

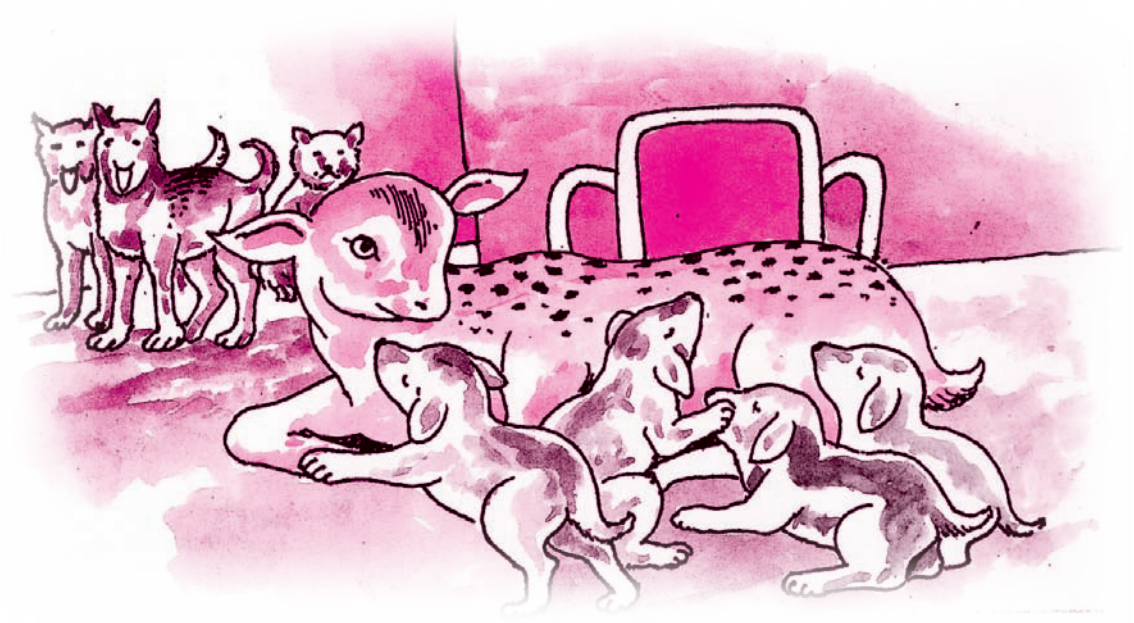

एक दिन देखा, फ्लोरा कहीं बाहर घूमने गई है और सोना भक्तिन की कोठरी में निश्चिंत लेटी है । पिल्ले आँख बंद रहने के कारण चीं-चीं करते हुए सोना के उदर में दूध खोज रहे थे । तब से सोना के नित्य के कार्यक्रम में पिल्लों के बीच लेट जाना भी सम्मिलित हो गया । आश्चर्य की बात यह थी कि फ्लोरा हेमंत, वसंत या गोधूली को तो अपने बच्चों के पास फटकने भी नहीं देती थी । परंतु सोना के संरक्षण में उन्हें छोड़कर आश्वस्त भाव से इधर-उधर घूमने चली जाती थी ।

संभवतः वह सोना के स्नेही और अहिंसक प्रकृति से परिचित हो गई थी । पिल्लों के बड़े होने पर और उनकी आँखें खुल जाने पर सोना ने उन्हें भी अपने पीछे घूमने वाली सेना में सम्मिलित कर लिया और मानो इस वृद्धि की उपलब्धि में आनंदोत्सव मनाने के लिए अधिक देर तक मेरे सिर पर आर-पार चौकड़ी भरती रही । पर कुछ दिनों के उपरांत जब यह आनंदोत्सव पुराना पड़ गया, तब उसकी शब्दहीन, संज्ञाहीन प्रतीक्षा की स्तब्ध घडियाँ फिर लौट आईं ।

उसी वर्ष गर्मियों में मेरा बद्रीनाथ यात्रा का कार्यक्रम बना। प्रायः मैं अपने पालतू जीवों के कारण प्रवास में कम रहती हूँ । उनकी देख-रेख के लिए सेवक रहने पर भी मैं उन्हें छोड़कर आश्वस्त नहीं हो पाती। भक्तिन, अनुरूप (नौकर) आदि तो साथ जाने वाले थे ही, पालतू जीवों में से मैंने फ्लोरा को साथ ले जाने का निश्चय किया क्योंकि वह मेरे बिना रह नहीं सकती थी ।

छात्रावास बंद था, अतः सोना के नित्य नैमित्तिक कार्यकलाप भी बंद हो गए थे । मेरी उपस्थिति का भी अभाव था । अतः उसके आनंदोल्लास के लिए भी अवकाश कम था ।

पैदल आने-जाने के निश्चय के कारण बद्रीनाथ की यात्रा में ग्रीष्मावकाश समाप्त हो गया । 2 जुलाई को लौटकर जब मैं बंगले के द्वार पर आ खड़ी हुई, तब बिछड़े हुए पालतू जीवों में कोलाहल होने लगा ।

गोधूली कूदकर कंधे पर आ बैठी । हेमंत-वसंत मेरे चारों ओर परिक्रमा करके हर्ष की ध्वनियों में मेरा स्वागत करने लगे, पर मेरी दृष्टि सोना को खोजने लगी । क्यों वह अपना उल्लास व्यक्त करने के लिए मेरे सिर के ऊपर छलाँग नहीं लगाती ? सोना कहाँ है, पूछने पर माली आँखें पोछने लगा और चपरासी, चौकीदार एक-दूसरे का मुख देखने लगे । वे लोग आने के साथ ही मुझे कोई दुखद समाचार नहीं देना चाहते थे, परंतु माली की भावुकता ने बिना बोले ही उसे दे डाला ।

ज्ञात हुआ कि छात्रावास के सन्नाटे और फ्लोरा के तथा मेरे अभाव के कारण सोना इतनी अस्थिर हो गई थी कि इधर-उधर कुछ खोजती-सी वह प्रायः कंपाउंड से बाहर निकल जाती थी । इतनी बड़ी हिरनी को पालने वाले तो कम थे, परंतु उसमें खाद्य और स्वाद प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों का बाहुल्य था । इसी आशंका से माली ने उसे मैदान में एक लंबी रस्सी से बाँधना आरंभ कर दिया ।

एक दिन न जाने किस स्तब्धता की स्थिति में बंधन की सीमा भूलकर वह बहुत ऊँचाई तक उछली और रस्सी के कारण मुख के बल धरती पर आ गिरी । वही उसकी अंतिम साँस और अंतिम उछाल थी ।

सब उस सुनहले रेशम की गठरी-से शरीर को गंगा में प्रवाहित कर आए और इस प्रकार किसी निर्जन वन में जन्मी और जन-संकुलता में पली सोना की करुण कथा का अंत हुआ ।

यह सुनकर मैंने निश्चय किया था कि हिरन नहीं पालूँगी, पर संयोग से हिरन ही पालना पड़ रहा है ।